STUDIES | Feminisms nº2

कनक मुखर्जी

tricontinental
Tricontinental: Institute for Social Research

LAYL
AL-ATTA
NELA
MARTINEZ
1912-2004
ANNA
JULIA
COOPER
1858-1964
SULAFA
JADALLA
1941-2002
1935-1967
FOROUGH
1840-1921
1921-1986
ANDRÉE
BLOUIN
1952-1977
SAIDA MENEBHI
FUNMILAYO
RANSOME-KUTI
1900-1978
ALAA
SALAH
1997-
VILM
ESPÍ
1927-2014
SIMIN
BEHBAHANI
1946-2019
BETH
CARVALHO
1923-2007
NAZIHA
AL-DULAIMI
1971-2016
BERTA
MARIE
VIEUX-
CHAUV
Las hermanas Mirabal.
NINA
SIMONE
1933-2003
ASELA
DE LOS
SANTOS
TAMAYO
1929-2020
Concebimos la necesidad de una conciencia revolucionaria y la hemos logrado.
ZILD
XAVI
1925-2015 PEREI
Marielle presente
1931-2014
ANAHITA
RATEBZAD
RITA VALDIVIA
1929-2017
EMMA
MARSHA P.
JOHNSON
HAYDÉE
SANTAMARÍA
1922-1980
CARSON
QIU 秋
JIN 瑾
1875-1907
1795-1856
MANUELA
SÁENZ Y
MARIA
BONITA
1911-1938
1907-1996
GODAVARI
PARULEKAR
VARVARA
STEPANOVA
FIRST
1925-1982

STUDIES | Feminisms n°2

कनक मुखर्जी (1921-2005)

संघर्षरत महिलाएँ, संघर्ष में महिलाएँ

Tricontinental: Institute for Social Research
March 2021

विमन एंड सेक्युलरिज़्म (महिलाएं और धर्मनिरपेक्षता), जनवादी महिला समिति, तमिलनाडु की उपाध्यक्ष, मिथिला सिवाराम की एक पुस्तक। इस पुस्तक का लेखन और इसमें शामिल चित्र दोनों ही महिलाओं के अधिकारों के लिए धर्मनिरपेक्षता के महत्व को उजागर करते हैं।

बीसवीं शताब्दी को अफ़्रीका और एशिया के साथ-साथ लैटिन अमेरिका में भी उभरे राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को लिए जाना जाता है, जहाँ नव-औपनिवेशिक संरचनाओं ने औपचारिक रूप से स्वतंत्र देशों को अपने अधीन कर लिया था। 1917 में रूसी क्रांति की उपलब्धियों ने दक्षिणी गोलार्ध के देशों में किसान और श्रमिक वर्ग को प्रेरित किया। हमारे समय के साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्षों में मेहनतकश लोगों के नेतृत्व में समानता और मुक्ति की लड़ाई जारी है। महिलाओं ने अनगिनत तरीक़ों से, पूरी ताक़त के साथ इन संघर्षों को आकार दिया है और दे रही हैं।

ट्राइकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान की संघर्षरत महिलाएँ, संघर्ष में महिलाएँ शृंखला में हम संघर्ष में शामिल महिलाओं की कहानियों को प्रस्तुत करेंगे, जिन्होंने न केवल राजनीति के व्यापक क्षेत्र में योगदान दिया, बल्कि जिन्होंने महिला संगठनों की स्थापना का बीड़ा उठाया, साथ ही जिन्होंने बीसवीं सदी के दौरान नारीवादी प्रतिरोध और संघर्ष के लिए रास्ता बनाया।

सैद्धांतिक ज्ञान और संघर्ष का संगठनात्मक तरीक़ा जो समय के साथ बदलता है और इतिहास बनाता है (अंग्रेज़ी में जिस प्रक्रिया के लिए प्रैक्सिस शब्द का इस्तेमाल किया जाता है), उत्पीड़न का सामना करने के लिए चल रहे संघर्षों को आधार प्रदान करता है। उग्रपंथियों के रूप में, हम इन महिलाओं के विविध संगठनात्मक तरीक़ों का अध्ययन न केवल उनके राजनीतिक योगदान को बेहतर ढंग से समझने के लिए करते हैं, बल्कि ख़ुद को प्रेरित करने के लिए भी करते हैं ताकि हम आज उत्पीड़न और शोषण के ख़िलाफ़ हमारी लड़ाई के लिए आवश्यक संगठनों का निर्माण कर सकें।

इस दूसरे अध्ययन में हमने कनक मुखर्जी के जीवन और विरासत पर चर्चा की है। 1921 में अविभाजित बंगाल, में पैदा हुई कनक मुखर्जी जनता और जन संघर्षों की सेनानी थीं। उनकी सक्रियता का समृद्ध आयाम हमें बीसवीं सदी के

दौरान स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले महिलाओं के संगठनों के इतिहस के बारे में बताता है, जिसने महिला अधिकारों को साम्राज्यवाद-विरोधी और पूँजीवाद-विरोधी संघर्षों से जोड़ा। कनक मुखर्जी के अपने शब्दों में: 'हम महिलाओं के अधिकारों के सवाल को अलग करके नहीं देख सकते हैं। महिलाओं की अधीनता और उनके साथ होने वाले भेदभाव की जड़ें वर्ग शोषण में निहित हैं'।

आजीवन प्रतिबद्ध सक्रियता

कनक मुखर्जी का जन्म कनक दासगुप्ता के रूप में पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश का हिस्सा) के जेसोर ज़िले के एक छोटे से इलाक़े बेंदा के एक शिक्षित राष्ट्रवादी परिवार में 1921 में हुआ था। उन्होंने दस साल की उम्र में स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लिया जब वो अपने परिवार के साथ नमक सत्याग्रह आंदोलन में शामिल हुईं। भारत में पूरी उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं सदी का पूर्वार्ध सामाजिक सुधार आंदोलनों के भरा हुआ था जहाँ जेंडर पर होनी वाली बहस और महिलाओं के अधिकारों के मुद्दे केंद्र में थे। बंगाल प्रांत इस तरह की गतिविधियों का केंद्र था। स्पष्ट रूप से कनक के बाल मन पर इसका गहरा असर हुआ, क्योंकि वह अपने बहुत क़रीबी रिश्तेदारों से बहुत प्रभावित थीं और उनके प्रति सहानुभूति रखती थीं, जो बहुत कम उम्र में विधवा हो गई थीं। अपनी आत्मकथा में वह अपनी एक चचेरी बहन की पीड़ा को याद करती हैं, जिसे अनिवार्य रूप से एक वैरागी का जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया था। परंपरा और धर्म की आड़ में चल रही पितृसत्ता के साथ कनक की यह सबसे शुरुआती मुठभेड़ थी।

कनक ने उपनिवेशवाद-विरोधी भूमिगत आंदोलनों में भी भाग लिया जिसने भारत पर ब्रिटिश क़ब्ज़े का सीधे तौर पर विरोध करने की माँग की। उनके

अपने भाई और चचेरे भाई, जो एक सशस्त्र क्रांतिकारी संगठन के सदस्य थे, घर में अपने हथियार छिपाते थे। जब उनकी बैठकें होती थीं तब बच्ची कनक अधिकारियों पर नज़र रखती थीं। इस अवधि के दौरान, महिलाएँ उपनिवेशवाद विरोधी विध्वंस के समर्थकों की भूमिका से निकलकर उग्रवादी प्रत्यक्ष कार्रवाई के विभिन्न रूपों में प्रमुख सदस्य की हैसियत से हथियारों का वितरण करने से लेकर पर्चे बाँटने, लेख लिखने और सक्रिय भागीदार बनने तक में शामिल रहीं। युगांतार और अनुशीलन समिति जैसे कई भूमिगत सशस्त्र समूह थे, जो बीसवीं शताब्दी के शुरुआती बीस-पच्चीस सालों में बंगाल में सक्रिय थे। इसके अधिकांश सदस्य शहरी, शिक्षित और बेरोज़गार युवाओं- जिनमें अविवाहित युवतियाँ भी शामिल थीं- की श्रेणी में आते थे और वे ज़्यादातर औपनिवेशिक ब्रिटिश अधिकारियों की अलग-थलग हत्याओं को अंजाम देते थे। धीरे-धीरे उपनिवेशवाद से प्रभावी ढंग से लड़ने की सीमाओं तथा व्यापक जन कार्रवाई की आवश्यकता को महसूस करते हुए, इन समूहों के कई सदस्य 1920 के बाद के दशक में उभरते हुए कम्युनिस्ट आंदोलन में शामिल हो गए।

जब कनक मध्य विद्यालय में थीं, तब वो बुनियादी मार्क्सवादी ग्रंथों को पढ़ने और चर्चा करने के लिए भूमिगत कम्युनिस्ट अध्ययन समूहों में शामिल हो गईं। 2001 में दिए गए एक साक्षात्कार में राजनीतिक शिक्षा हासिल करने के अपने संघर्ष के बारे में उन्होंने बताया:

> भूमिगत पार्टी का दौर था- की कोष्टो आमादेर कोरते होएछे मा (‘हमें कितना कुछ करना पड़ा, ओ माँ’)। इन दिनों आपको सभी प्रकार के राजनीतिक साहित्य, अंग्रेज़ी और बंगाली में, भारी संख्या में मिलते हैं। कई दैनिक अख़बार, कई बैठकें, इतने सारे सार्वजनिक भाषण - आपके पास अपनी राजनीतिक चेतना बढ़ाने के लिए कितने सारे अवसर हैं। हमारे लिए... उन्होंने हमें एक कम्युनिस्ट मेनिफ़ेस्टो दिया, जिसे आपको छुपाकर रखना था ... जो कि अंग्रेज़ी में था, और मैं तब कक्षा आठ या नौ में थी ...

> देर रात गए, जब दूसरे सो रहे होते थे, मैं मेनिफ़ेस्टो को लैम्प की रौशनी में पढ़ती, और साथ में एक शब्दकोश होता।

1937 में, कनक मुखर्जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय (अब कोलकाता) में बेथ्यून कॉलेज में दाख़िला लिया। इस अवधि के कई कम्युनिस्ट महिला नेताओं की तरह इन्होंने ऑल इंडिया स्टूडेंट्स फ़ेडरेशन (एआईएसएफ़) जैसे कम्युनिस्ट जन संगठनों के माध्यम से काम करना शुरू किया। रेणु चक्रवर्ती और कनक मुखर्जी दोनों ने यह रास्ता अपनाया। 1938 में, सत्रह साल की उम्र में कनक मुखर्जी भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (CPI) में शामिल हो गईं। वो बंगाल में पार्टी में शामिल होने वाली शुरुआती महिला सदस्यों में से थीं। सीपीआई की एक और शुरुआती सदस्य रेणु चक्रवर्ती, जो उनसे केवल चार साल बड़ी थीं, उस दौरान की कनक मुखर्जी को 'एक छोटी, पतली, कूदती-फाँदती लड़की' के रूप में याद किया है। वह बंगाल प्रांतीय छात्र फ़ेडरेशन के कार्यकारी बोर्ड की एकमात्र महिला सदस्य भी थीं। मज़दूर वर्ग के आंदोलन के अलावा वामपंथी रुझान वाले महिला तथा छात्र जन संगठन दो सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्तियाँ थीं जिन्होंने उपनिवेशवाद-विरोधी और साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में योगदान दिया था।

लतिका सेन, मणिकुंतला सेन और कल्पना दत्ता जोशी जैसी कम्युनिस्ट महिलाओं ने बाद में महिलाओं के जन आंदोलन के निर्माण में नेतृत्वकारी भूमिका अदा की। हालाँकि उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई, लेकिन महिलाओं के लिए राजनीति का हिस्सा बनना और पूर्ण-कालिक कार्यकर्ता होना आसान नहीं था, न ही परिवार के सदस्यों द्वारा इसे स्वीकार किया जाता था। पश्चिम बंगाल डेमोक्रेटिक वूमेंस एसोसिएशन की राज्य सचिव और कनक मुखर्जी द्वारा शुरू की गई पत्रिका एकसाथे की संपादक श्यामोली गुप्ता ने कहा कि कनक मुखर्जी के स्वयं के जीवन में यह जटिलता प्रमुख थी। परिवार के समर्थन की कमी के बावजूद,

अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति, तमिलनाडु द्वारा 1980 के दशक के अंत में जारी किया गए एक पैम्फ़्लेट का कवर पेज। जनवादी महिला समिति लंबे समय से जला कर की गई दहेज हत्याओं के ख़िलाफ़ लड़ रही थी। इन हत्याओं को अक्सर केरोसिन स्टोव फटने के मामले की तरह पेश किया जाता था। इस पैम्फ़्लेट में लिखा है, "हमें आग खाए जा रही है, अब ज्वालामुखी फटने दो"।v

कनक मुखर्जी ने अपने पूर्ण विश्वास तथा क्रांतिकारी कामगार वर्ग की राजनीति के प्रति अपनी अदम्य प्रतिबद्धता की वजह से अपनी सियासी सक्रियता को जारी रखा।

कम्युनिस्ट और जन आंदोलन, जो कि श्रमिक वर्ग और किसान वर्ग के प्रति सहानुभूति रखते थे, उनमें 1920 और 1930 के दशक के दौरान पर्याप्त वृद्धि हुई। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रमुख औपनिवेशिक महानगरों में से एक कलकत्ता में देश भर से प्रवासियों के आने का सिलसिला शुरू हुआ। विभिन्न जातीय, भाषाई और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से संबंधित लोग नौकरी, उच्च शिक्षा, राजनीतिक सक्रियता और बौद्धिक खोज की तलाश में शहर में आए। दो दशकों तक शहर में जो कुछ हुआ उसे 'स्ट्राइक वेव' कहा गया, विशेष रूप से प्रथम विश्व युद्ध के बाद मज़बूत ट्रेड यूनियन और उग्रवादी श्रमिक-वर्ग के प्रतिरोध के कारण ऐसा हुआ। बुनियादी वस्तुओं की क़ीमतों में वृद्धि, बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी, संपत्तिविहीनों की बुरी जीवन स्थिति, उग्र जातिवाद, और सामाजिक अलगाव ने इन हड़तालों को एक व्यापक आयाम दिया। कनक मुखर्जी इस जीवंत शहर में न केवल उच्च शिक्षा की खोज में, बल्कि व्यापक रूप से उपनिवेशवाद-विरोधी श्रमिक-वर्ग संघर्ष का भी हिस्सा बनने पहुँचीं। बंगाल में छात्रों को संगठित करने के अपने काम के साथ, कनक ने औद्योगिक क्षेत्र काशीपुर, जहाँ ये प्रवासी मज़दूर रहते थे, में ट्रेड यूनियन नेताओं द्वारा चलाए जा रहे साक्षरता अभियान में भी हिस्सा लिया। उन्होंने एक अंशकालिक हिंदी पाठ्यक्रम में दाख़िला लिया और स्वतंत्र रूप से भाषा का अध्ययन करना जारी रखा ताकि प्रवासी मज़दूरों को उनकी अपनी भाषा में पढ़ा सकें।

राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए कलकत्ता में रहना आसान नहीं था - ख़ासकर कम्युनिस्टों के लिए। कम्युनिस्ट पार्टी का अधिकांश काम भूमिगत था। उनकी पार्टी की संबद्धता / सदस्यता के बारे में जानने के बाद मकान मालिक उन्हें

किराए पर मकान नहीं देते थे; पार्टी के कई कार्यकर्ता, जो पुरुष और महिला दोनों थे, पार्टी से सहानुभूति रखने वालों के घरों में रहते थे। औपनिवेशिक शासक लगातार उनके पीछे पड़े रहते थे, इसलिए वे सुकून से एक जगह नहीं रह पाते थे, और उन्हें बार-बार अपनी जगहें बदलनी पड़ती थीं। उन लोगों को भी उत्पीड़न का सामना करना पड़ता था जो कम्युनिस्टों को शरण देते थे। परिणामस्वरूप, पार्टी कैडरों के लिए स्थायी तौर पर रहने की व्यवस्था करने के लिए कम्यून का विकास हुआ।

उस युग के कई कम्युनिस्टों की तरह, कनक कलकत्ता पहुँचने के बाद सक्रिय पार्टी कार्यकर्ताओं के घरों में रहती थीं। बाद में वह केंद्रीय कलकत्ता में एक कम्यून में चली गईं, जहाँ उनकी मुलाक़ात मुज़फ़्फ़र अहमद ('काकाबाबू') से हुई, जो भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन के क़द्दावर नेताओं में से एक थे। काकाबाबू पार्टी में शामिल हुए युवाओं की देखभाल करते थे, उनकी गर्मजोशी उन युवाओं को आसानी से उनके इर्द-गिर्द इकट्ठा कर देती थी। बहुत जल्द काकाबाबू और कनक के बीच कॉमरेडाना स्नेह का रिश्ता विकसित हो गया।

जब कनक को अपने परिवार की सहायता करने के लिए स्कूल में शिक्षक की नौकरी करनी पड़ी तो यह सोचकर उनका दिल टूट गया कि वह राजनीतिक काम के लिए उतना समय नहीं दे पा रही हैं और अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता से समझौता कर रही हैं। वह काकाबाबू के सामने ख़ुद को रोक नहीं सकीं और उनके आँसू निकल गए, काकाबाबू ने यह कहकर साँत्वना दी कि वह आर्थिक तंगी और पारिवारिक ज़िम्मेदारी की वजह से राजनैतिक सक्रियता से पीछे नहीं हट रही हैं इसलिए कनक को इसके बारे में बुरा नहीं मानना चाहिए, काकाबाबू ने कनक से कहा; कम्युनिस्ट के लिए कभी भी ये या वो चुनने की स्थिति नहीं होती है। कनक और काकाबाबू के बीच लगाव, देखभाल और आपसी सम्मान का यह रिश्ता उनकी मृत्यु तक जारी रहा।

कनक अपने पति सरोज मुखर्जी के साथ कम्युनिस्ट कम्यून में रहती थीं, जिनसे उनकी पहली मुलाक़ात 1939 में तब हुई थी जब वे भूमिगत थे, साथ ही एक और विवाहित जोड़ा - जिनमें से प्रत्येक का अपना कमरा था - और चार या पाँच अविवाहित महिला और पुरुष जो जेंडर के आधार पर विभाजित दो अलग-अलग कमरों में रहते थे। कनक मुखर्जी ने अपने संस्मरण, मोने मोने ('इन मेमरी') में कम्यून की सकारात्मक भूमिका के बारे में लिखा है: 'हमारे कम्यून में संयुक्त जीवन का माहौल काफ़ी गर्मजोशी से भरा था ... हम जो शादीशुदा थे वह दूसरों के साथ सामहिक रूप से रहने के दौरान किसी भी तरह की बेचैनी महसूस नहीं करते थे'। मुखर्जी की यादें उन प्रचलित धारणाओं का प्रतिकार करती हैं जो अनुमान लगाती हैं कि ये ग़ैर-पारंपरिक परिवार क्षुद्र ईर्ष्या और बेवफ़ाई से ग्रस्त थे।

भारत में महिला आंदोलन

इस उबाऊ और लगातार होने वाले सवाल पर अब विराम लग जाना चाहिए कि कम्युनिस्ट और वामपंथी महिलाओं का समूह व्यापक नारीवादी आंदोलन का हिस्सा हैं या नहीं। साम्यवादी आंदोलनों में महिलाएँ लम्बे समय से और लगातार महिलाओं के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समानता की नारीवादी माँग उठाती रही हैं। वे महिलाओं के लिए महिलाओं द्वारा नेतृत्व की वकालत करती रही हैं। वामपंथी महिलाओं ने महिलाओं के अधिकारों का समर्थन करने के लिए किसान आंदोलनों से लेकर दलित (उत्पीड़ित जाति) आंदोलनों और आदिवासी (स्वदेशी लोगों) आंदोलनों जैसे सभी प्रगतिशील आंदोलनों को आगे बढ़ाने में मदद की है। उन्होंने इन आंदोलनों तथा महिलाओं के समान मताधिकार, संपत्ति के अधिकार और तलाक़ के अधिकार जैसे मुद्दे पर बनने वाले संयुक्त नारीवादी अभियानों के बीच का आपसी संबंध मज़बूत किया है। इस अवधि के दौरान भारत के मामले में, यह एकजुटता दोनों

AIDWA की त्रैमासिक अंग्रेजी भाषा की पत्रिका, विमन'स इक्वालिटी (महिला समानता), अंक 1, सं 2 (जुलाई-सितंबर 1988)

दिशाओं में फैल गई: कम्युनिस्ट महिला कार्यकर्ताओं ने कम्युनिस्ट संगठन विधियों और नेतृत्व तथा भारतीय महिला आंदोलनों के भीतर कृषक वर्गों, श्रमिक वर्गों, और आदिवासी तथा दलित समुदायों के प्रति विद्यमान पूर्वग्रहों को दूर करने का काम किया। आदिवासी और दलित समुदाय। यदि किसानों और श्रमिक वर्ग की महिलाएँ और पुरुष महिलाओं के अधिकारों का समर्थन कर रहे थे, तो महिलाओं के आंदोलन को न केवल मध्य वर्गीय और कुलीन महिलाओं बल्कि सभी महिलाओं की ज़रूरतों को शामिल करने के लिए अपनी माँगों को व्यापक करना पड़ा।

1927 में, कांग्रेस पार्टी ने एक महिला संगठन, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (AIWC) का गठन किया। हालाँकि, AIWC ने हाशिये पर रहने वाली महिलाओं को अपने आंदोलन में शामिल होने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने या अपनी माँगों को उठाने के लिए संगठित नहीं किया। AIWC की जिस तरह परिकल्पना की गई थी उसके सदस्य मुख्य रूप से अंग्रेज़ों के सहयोगी शाही परिवारों और ज़मींदार परिवारों से थीं। मणिकुंतला सेन, फुलरेणु गुहा और रेणु चक्रवर्ती जैसी कई प्रमुख कम्युनिस्ट नेता शुरू में AIWC का हिस्सा थीं। हालाँकि, उन्होंने जल्द ही महसूस किया कि हाशिये पर रहने वाली महिलाएँ - जो कि कृषक तथा समाज के निचले पायदान से संबंध रखती थीं- न तो संगठन की सदस्य थीं न ही उनका किसी तरह का प्रतिनिधित्व था, और न ही उनका वर्ग हित इस संगठन की माँगों में परिलक्षित होता था। इन सबसे बढ़कर, समाज के बुनियादी पितृसत्तात्मक ढाँचे को मौलिक रूप से बदलने का कोई प्रयास भी नहीं था।

युवा और छात्र संगठनों का निर्माण

1930 के दशक के उत्तरार्ध में, मिडिल स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियों तथा कॉलेज में पढ़ने वाली युवतियों ने भारत में स्वतंत्रता आंदोलन में अहम भूमिका अदा की। रेणु चक्रवर्ती उन कारणों को याद करती हैं जिन्होंने कनक मुखर्जी को छात्री संघ या गर्ल्स स्टूडेंट्स एसोसिएशन (GSA) के नाम से ऑल इंडिया स्टूडेंट्स फ़ेडरेशन (AISF) की एक शाखा बनाने के लिए प्रेरित किया:

> जब 1938 में अंडमान क़ैदियों की रिहाई के लिए आंदोलन अपने चरम पर पहुँच गया, तब पूरे देश में छात्रों द्वारा आयोजित विशाल सभाओं और प्रदर्शनों में छात्राओं ने भारी संख्या में हिस्सा लिया। यही वह समय था जब छात्राओं को संगठित करने की आवश्यकता महसूस हुई। लेकिन वे एआईएसएफ़ जैसे संगठन में बड़ी संख्या में शामिल नहीं हुईं जहाँ पुरुष छात्र सदस्यों की ही प्रधानता थी। सामाजिक वर्जनाएँ अभी भी मज़बूत थीं।

जीएसए ने एक ही संगठन में युवा पुरुषों के साथ काम करने वाली युवा महिलाओं के सामाजिक अस्वीकृति का मुक़ाबला करने और युवा महिलाओं के लिए न केवल सामूहिक विरोध प्रदर्शन में शामिल होने के लिए, बल्कि आंदोलन के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए इसे संभव बनाने की माँग की। उन्होंने समान शर्तों पर युवा पुरुषों के साथ घुलने-मिलने वाली युवतियों की सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ने के लिए एक लिंग-पृथक्कृत संगठनात्मक रूप का उपयोग करने की माँग की। इसके लिए, जीएसए ने लोगों के बीच अपनी बात रखने, सार्वजनिक बैठकों के आयोजन, और उपनिवेश-विरोधी उग्र राजनीति की रणनीति को बनाने और रणनीतियों को लागू करने के लिए युवा महिलाओं के नेतृत्व कौशल को विकसित किया। उन्होंने संगठन बनाने के साथ-साथ विभिन्न अभियानों को चलाने के विभिन्न तरीक़ों का भी विकास किया, और कृषक महिला समेत बंगाल में मुख्य रूप से स्वदेशी क्षेत्रों

की महिलाओं को संगठित करने के लिए परियोजनाओं का नेतृत्व किया। दूसरे विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रवादी राजनीति में प्रवेश करने वाली इन युवतियों के प्रभाव ने देश के कुछ सबसे उग्र साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलनों को हवा दी।

जनवरी 1940 में, कनक मुखर्जी और अन्य नेताओं ने लखनऊ, उत्तर प्रदेश में ऑल इंडिया गर्ल्स स्टूडेंट एसोसिएशन का पहला राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में समतामूलक तलाक़ के अधिकारों, बहुविवाह के उन्मूलन और लड़कियों के लिए मुफ़्त शिक्षा की माँग की गई। इस सम्मेलन में, कनक मुखर्जी ने हिंदू कोड बिल के पक्ष में बात की, जो पर्सनल लॉ में महिलाओं के अधिकारों की गारंटी देता है। स्वतंत्रता आंदोलन की एक राष्ट्रवादी नारीवादी नेता सरोजिनी नायडू सम्मेलन की मुख्य अतिथि थीं। उन्होंने कहा, 'युवा छात्रों के साथ जुड़ें और स्वतंत्रता के लिए किए जा रहे संघर्ष की मुख्यधारा में युवाओं को लाएँ!' लखनऊ सम्मेलन के बाद छात्र नेताओं ने जीएसए का विस्तार करने के लिए मदरास (अब चेन्नई) से लेकर बॉम्बे (अब मुंबई) तथा पंजाब तक देश का दौरा किया। जीएसए के क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सम्मेलनों में बड़ी संख्या में युवतियों ने भाग लिया और द्वितीय विश्व युद्ध में साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार के प्रवेश के समय सरकार का ध्यान आकर्षित किया और उसके इस क़दम की आलोचना की।

साम्राज्यवादी युद्ध

कनक मुखर्जी को ब्रिटिश प्रशासन द्वारा 1939-1942 के बीच कई बार गिरफ़्तार किया गया, यह गिरफ़्तारी उस संघर्ष का विरोध करने की वजह से हुई जिसे भारतीय कम्युनिस्ट साम्राज्यवादी युद्ध कहते थे। 1940 में, उन्हें उनकी बहन और उनकी भतीजी के साथ गिरफ़्तार किया गया था। हालाँकि, साक्ष्य की कमी के कारण उन्हें सात दिनों की जेल के बाद रिहा कर दिया गया,

लेकिन औपनिवेशिक पुलिस ने उनके ख़िलाफ़ एक विशेष आदेश जारी किया जिसमें कहा गया था कि उन्हें 24 घंटे के भीतर कलकत्ता शहर छोड़ना होगा साथ ही कलकत्ता तथा निकटवर्ती हावड़ा जिला के औद्योगिक क्षेत्रों का दौरा करने से भी मना कर दिया गया। वह जमशेदपुर चली गईं, जहाँ उन्होंने अपनी सक्रियता को जारी रखा, उन्हें फिर से गिरफ़्तार कर लिया गया, और फिर इस शहर से भी प्रतिबंधित कर दिया गया। उनका अगला ठिकाना बारिसाल था, वहाँ भी उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया और उस शहर में भी दोबारा उनके प्रवेश करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। तब वो सीपीआई की पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में भूमिगत हो गईं और सुरक्षा की दृष्टि से लगातार घर बदलती रहीं।

जुलाई 1942 में, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने सीपीआई के ख़िलाफ़ लगा प्रतिबंध हटा दिया जो 1934 से 1942 तक नौ वर्षों तक रहा। अक्टूबर 1942 में, कनक मुखर्जी अपने राजनीतिक कार्य को फिर से शुरू करने के लिए कलकत्ता लौट आईं, और महिलाओं के राजनीतिक संगठन के इर्द-गिर्द अपनी सक्रियता को केंद्रित कर लिया। इस संदर्भ में, वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद और फ़ासीवाद का विरोध करती रहीं।

बंगाल अकाल और महिला आत्म रक्षा समिति

1940 का दशक स्वतंत्रता-पूर्व के भारत में, विशेष रूप से बंगाल में, शायद सबसे अधिक घटनापूर्ण और अशांत समय रहा। 1943 के बंगाल के भीषण अकाल (जिसे बांग्ला में तेताल्लिशेर मन्नांतोर के नाम से जाना जाता है), 1946 का भयावह सांप्रदायिक दंगा और धार्मिक आधार पर बंगाल के विभाजन ने अचानक मानवीय स्वभाव के क्रूर और घृणित प्रवृत्तियों को सबके सामने

उजागर कर दिया। 1943 के बंगाल के अकाल के कारण देश में बड़े पैमाने पर ग़रीबी और भुखमरी की स्थिति पैदा हो गई। साथ में हैज़ा, मलेरिया और चेचक जैसी महामारी ने ग्रामीण आबादी के एक बड़े हिस्से का सफ़ाया कर दिया। बंगाल में कृषि क्षेत्र में श्रम में आई तेज़ कमी ने आजीविका की तलाश में पुरुषों को दूर-दराज़ जगहों पर जाने के लिए मजबूर किया। जो महिलाएँ और बच्चे बच गए, वे बेतहाशा मानव तस्करी सहित कई तरीक़ों से असुरक्षित हो गए, क्योंकि अकाल की वजह से बड़े पैमाने पर लिंग आधारित हिंसा और महिलाओं पर यौन हमले हुए।

ऐसी परिस्थिति में 13 अप्रैल 1942 को कलकत्ता में महिलाओं द्वारा आयोजित फ़ासीवाद-विरोधी सम्मेलन के दौरान महिला आत्म रक्षा समिति का गठन किया गया था। कनक मुखर्जी इस समिति की संस्थापक सदस्यों में से थीं और इसकी आयोजन समिति में भी थीं। इस अवधि के दौरान, उन्होंने ग्रामीण, ग़रीब महिलाओं पर अकाल के प्रभावों के बारे में अख़बारों में कई आक्रामक लेख लिखे।

महिला आत्म रक्षा समिति ने एक उदासीन औपनिवेशिक सरकार द्वारा छोड़े गए ख़ाली जगह को भरा और बड़े पैमाने पर राहत कार्यों को अंजाम देकर सीधे तौर पर अकाल के विनाशकारी प्रभावों से निपटने का प्रयास किया। 1942-1943 के अकाल और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश सेना की प्राथमिकता अपने सैनिकों को भोजन मुहय्या कराना था न कि साधारण जनता का पेट भरना, जापानी क़ब्ज़े वाले बर्मा से चावल के आयात को रोकने से स्थिति और भी गंभीर हो गई। महिला आत्म रक्षा समिति उन वितरकों के ख़िलाफ़ संगठित हुईं जो अधिक मुनाफ़े के लिए अनाज जमा कर रहे थे।

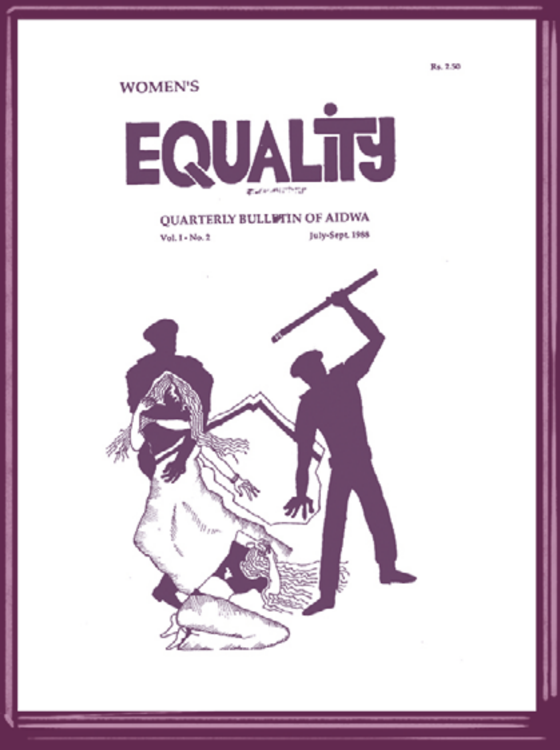

1999 में जनवादी महिला समिति ने "मंजुलाई चाय बाग़ान श्रमिकों की क्रूर हत्या" रिपोर्ट जारी की थी, तमिलनाडु के मजदूर बेहतर वेतन, आवास और मातृत्व अवकाश की माँग के लिए संघर्ष कर रहे थे, जिसके बाद पुलिस कार्यवाई में सत्रह श्रमिक मारे गए।

बंगाल के अकाल के दौरान महिला आत्म रक्षा समिति की भूमिका ने संगठन को स्वतंत्रता आंदोलन की अग्रिम पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। इस दौरान भूखे लोग भोजन की तलाश में आसपास के क्षेत्रों से आकर कलकत्ता की सड़कों पर डेरा डालने लगे। महिला आत्म रक्षा समिति के सदस्यों ने शहरी झुग्गियों और ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के साथ काम करने के अलावा मध्यम वर्ग की महिलाओं के साथ काम करने का फ़ैसला किया। अक्सर समिति के सदस्य भोजन वितरण की क़तार के साथ खड़ी रहतीं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अपनी बारी का इंतज़ार कर रही युवतियों के साथ न तो किसी तरह ही ज़बरदस्ती हो न ही उनका अपहरण किया जा सके। सबसे कमज़ोर तबक़े की ये महिलाएँ महिला आत्म रक्षा समिति की मुख्य सदस्य बनकर उभरीं और आगे चलकर भारत में महिलाओं के आंदोलन को विस्तार देने और मज़बूत बनाने में इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अधिकारों और सम्मान की लड़ाई, और यौन हिंसा का अंत आज भारतीय समाज के सबसे केंद्रीय मुद्दों में से एक है।

कनक मुखर्जी ने अकाल के प्रभावों को अपनी आँखों से देखा और उस दौरान महिलाओं के संघर्ष और हताशा के बारे में चर्चा की। एक दृष्टांत में, उन्होंने देखा कि एक माँ अपनी सात साल की बेटी को थोड़े से अनाज के लिए बेच देती है, जो अनाज उसे बेटी बेचने के दो महीने बाद मिलता है। एक अन्य दृष्टांत में, उन्होंने देखा कि एक युवती भोजन वितरण केंद्र से थोड़ा-सा राशन प्राप्त करने के बाद अमेरिकी सैनिकों के क्वार्टर में प्रवेश करती है। इस भयावह संकट के दौरान, महिलाओं के शोषण में वृद्धि हुई, क्योंकि कई महिलाओं को जीवित रहने के लिए देह व्यापार में लिप्त होना पड़ा। सैनिकों के साथ-साथ ज़मींदारों और अन्य लोगों ने भी महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न करके उनकी हताशा का फ़ायदा उठाया। कनक मुखर्जी ने एक पत्रकार और एक कार्यकर्ता के रूप

में, इन बलात्कार अपराधों के बारे में साथ ही कई ग़रीब महिलाओं को देह व्यापार के अलावा रोज़गार के अवसरों की कमी के बारे में जागरूक किया।

परित्यक्त महिलाओं और लड़कियों की यौन तस्करी और भुखमरी से लड़ने के लिए एकजुट प्रयास में कम्युनिस्ट और राष्ट्रवादी महिलाओं के ग्रामीण और शहरी संगठनों को आपस में जोड़कर एक संगठित अभियान चलाने में कनक मुखर्जी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। मूलभूत आवश्यकताओं के लिए और उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई के लिए महिलाओं को संगठित करने के लिए उन्होंने महिला आत्म रक्षा समिति की आयोजन समिति के एक सदस्य के रूप में पूरे ग्रामीण बंगाल की यात्रा की। वह उत्तरी बंगाल और वर्तमान बांग्लादेश के रंगपुर ज़िले में दुआर्स के चाय बाग़ान क्षेत्र में गईं, जो बड़े पैमाने पर औपनिवेशिक शोषण के कारण अत्यधिक ग़रीबी और संकट से ग्रस्त थे।

उन्होंने अकाल के कारण हुई तबाही के साथ-साथ महिला आत्म रक्षा समिति की प्रतिक्रिया के बारे में बताया:

> अक्टूबर 1943 में, बंगाल में मानव निर्मित अकाल शुरू हुआ। महिला आत्म रक्षा समिति के सदस्य राहत और पुनर्वास के काम में लग गए। उन दिनों का अनुभव तकलीफ़देह था; हमने कलकत्ता की सड़कों पर बच्चों को मरते हुए देखा। गाँव की भूखी महिलाओं को तस्करों द्वारा शहर में लाया जाता था और वेश्याओं के रूप में बेच दिया जाता था। 'कालोबाजार' [काला बाज़ार] शब्द पहली बार हमारी शब्दावली का हिस्सा बना। यूरोपीय और अमेरिकी सैनिकों द्वारा गाँव की महिलाओं के बलात्कार से लोग अनजान नहीं थे। इस प्रकार, जब हमने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ युद्ध का समर्थन किया, तब भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ हमारा गुस्सा हमेशा की तरह तेज़ था, जिसने अकाल की स्थिति

> पैदा की जिससे हमारे लोगों को बेइंतहा तकलीफ़ हुई। इस अवधि में और उसके तुरंत बाद हमने अपना ध्यान ज़िलों में उन महिलाओं के लिए पुनर्वास केंद्र स्थापित करने पर केंद्रित किया, जो अकाल या सांप्रदायिक दंगों की शिकार थीं। महिला आत्म रक्षा समिति ने सामाजिक पुनर्वास में केंद्रीय भूमिका निभाई।

महिला आत्म रक्षा समिति ने अंतर्राष्ट्रीय अभियानों और उपनिवेशवाद-विरोधी राष्ट्रवाद को स्थानीय अभियानों के साथ जोड़ा, जैसे कि महिला आत्म रक्षा समिति के नेतृत्व में एक शुरुआती अभियान चलाया गया जिसमें बंगाल में तैनात मित्र देशों के सैनिकों द्वारा बंगाली महिलाओं के बलात्कार की घटनाओं को उजागर किया गया। इन अभियानों ने एक क्रांतिकारी कार्रवाई की शुरुआत की जिसने सैन्य हमलों तथा उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ महिलाओं की रक्षा की अवधारणा के साथ-साथ सैन्य तथा औपनिवेशिक क़ब्ज़े के साथ होने वाली यौन हिंसा के ख़िलाफ़ महिलाओं की आत्मरक्षा की लड़ाई की वकालत की।

विभाजन और सांप्रदायिक दंगे

1946 में, सांप्रदायिक दंगों के दौरान महिलाओं की पीड़ा एक बार फिर सुर्ख़ियों में आई। अंग्रेज़ों द्वारा बंगाल के विभाजन के बाद राज्य भर में बड़े पैमाने पर हिंसा हुई। बंगाल का विभाजन धार्मिक आधार पर किया गया था। अकेले कलकत्ता में तीन दिनों के दौरान 4,000 लोग मारे गए। दंगों के दौरान महिलाओं के ऊपर होने वाली यौन हिंसा ने ग्रामीण बंगाल में, ख़ासकर नोआखली क्षेत्र में, भयावह स्वरूप अख़्तियार कर लिया। अपनी सीमित ताक़त के बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी शांति के लिए आग्रह करते हुए किसी भी तरह के सांप्रदायिक विभाजन के ख़िलाफ़ अभियान में सबसे आगे थी। यह कम्युनिस्टों के अभियान के कारण संभव हुआ कि कुछ ट्रेड यूनियनों, जैसे कि रेलवे

कर्मचारी और ट्राम वर्कर्स यूनियन ने कलकत्ता के कुछ क्षेत्रों में श्रमिक वर्ग की एकजुटता का उल्लेखनीय प्रदर्शन किया और वे कलकत्ता के कुछ इलाक़ों में दंगाइयों से भिड़ गए।

दंगों और अकाल के दौरान महिला आत्म रक्षा समिति ने ग्रामीण महिलाओं के बीच सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के ख़िलाफ़ अभियान चलाकर एक बड़ी भूमिका निभाई। एक संयुक्त राहत समिति का गठन किया गया, जैसा कि अकाल के दौरान किया गया था। महिला आत्म रक्षा समिति के वोलंटियर को अखिल भारतीय महिला सम्मेलन के साथ ग्रामीण बंगाल में भेजा गया, उन्होंने एक गाँव से दूसरे गाँव तक की पैदल यात्रा की, चाँदपुर और हैमचार जैसे गाँवों में दूध और अन्य बुनियादी आपूर्ति वितरित की गई। अकाल, सांप्रदायिक दंगों, और 1947 के विभाजन का प्रभाव भारतीय समाज के कमज़ोर तबक़े की महिलाओं पर सबसे अधिक पड़ा, जो महिला आंदोलन के लिए अब भी एक महत्वपूर्ण सबक़ है।

बोउबाज़ार स्ट्रीट और कम्युनिस्टों पर कार्रवाई

1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद भी कम्युनिस्टों का उत्पीड़न ख़त्म नहीं हुआ। 1942 में सीपीआई के ख़िलाफ़ लगाए गए प्रतिबंध हटाए जाने के बाद भी जेल में बंद सभी राजनीतिक क़ैदियों की बिना शर्त रिहाई की माँग को लेकर 27 अप्रैल 1949 को महिला आत्म रक्षा समिति ने कलकत्ता में एक सभा का आयोजन किया था। भारत में महिला आंदोलन के इतिहास में यह दुखद परंतु यादगार दिन रहा। अधिवेशन के बाद, उपस्थित लोगों ने बोउबाज़ार स्ट्रीट की ओर मार्च किया, लेकिन जल्द ही पुलिस ने उन्हें रोक दिया। झड़प के दौरान पुलिस ने पश्चिम बंगाल की कांग्रेस सरकार के आदेश के तहत गोलियाँ बरसाईं।

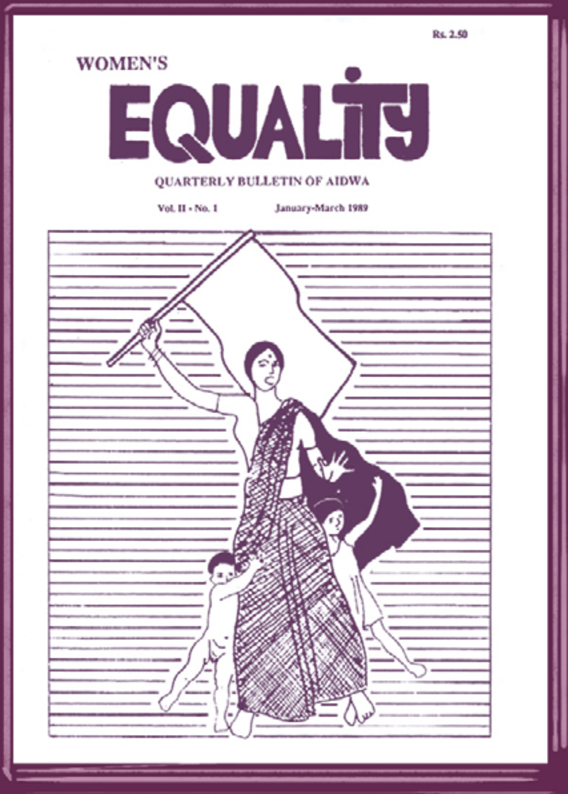

विमन’स इक्वालिटी, अंक 2 सं 1(जनवरी-मार्च 1989)

भारत में महिलाओं के आंदोलन को संगठित करने में प्रमुख भूमिका निभाने वाली कम्युनिस्ट नेता लतिका सेन, प्रतिभा गांगुली, गीता सरकार और अमिया दत्ता की मौक़े पर ही मौत हो गई। यमुना दास महतो को अस्पताल ले जाया गया, जहाँ बाद में गहरे चोटों की वजह से उनकी मृत्यु हो गई। कनक मुखर्जी ने कई दिन जेल में बिताए, उस दौरान वह अपने छोटे से बेटे से अलग रहीं।

जेल में, महिलाओं ने अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल की, अपनी रिहाई और अन्य राजनीतिक क़ैदियों की रिहाई की माँग की। हालाँकि ज़बरदस्त भूख की इच्छा को दबा पाना अक्सर मुश्किल होता था। जेल के दौरान कनक कुछ युवा महिलाओं के दृढ़ संकल्प और ऊर्जा को याद करती हैं:

ये युवा स्कूली छात्राएँ -ममता, निरुपमा, उषा, आरती छाया... अपनी भूख हड़ताल के दौरान लगातार उत्साह के साथ गायन, नृत्य, हँसी-ठिठोली के साथ-साथ पढ़ाई करती थीं। ममता कुछ समय के लिए मेरी कोठरी में थी। हम जितने भूखे होते उसके क्रांतिकारी गीत उतने ही बुलंद होते। हम अक्सर बकबक करते थे! 'ओह! मैंने उस स्वादिष्ट भोजन को बर्बाद कर दिया या यह मेरा पसंदीदा व्यंजन है।' आख़िरकार हमने भोजन के बारे में किसी भी तरह की चर्चा को 'प्रतिबंधित' कर दिया।

शरणार्थी को संगठित करना

1950 के दशक ने बंगाल के इतिहास के आंदोलन के संघर्ष का एक और अध्याय देखा। विभाजन के बाद अपना घर-बार, रोज़ी-रोज़गार, ज़मीन छोड़कर तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) से आए शरणार्थियों की बड़ी संख्या ने पश्चिम बंगाल की ओर पलायन करना शुरू किया। ये प्रवासी पश्चिम

बंगाल के विभिन्न इलाक़ों में बसे। राज्य की राजधानी कलकत्ता में उन लोगों की भारी संख्या में आमद हुई जो अनधिकृत बस्तियों में रह रहे थे - जिनमें से कुछ शहर के अभिजात वर्ग के आरामगाहों के आसपास रह रहे थे- जहाँ उनके रहने की स्थिति भयावह थी।

लगभग उसी समय कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व वाली नगर निगम ग़रीबों को बेदख़ल करने और पारंपरिक कुलीन वर्ग के संपत्ति हितों की रक्षा करने के इरादे से कड़े विधेयकों और अध्यादेशों के माध्यम से लगातार हमले करती है। बंगाल की राज्य सरकार शरणार्थियों को न केवल घर जैसा कोई स्थायी पुनर्वास प्रदान करने के लिए तैयार नहीं थी, बल्कि वह उनकी उपस्थिति को शत्रुतापूर्ण दृष्टि से देखती थी और उनकी माँगों को दबाने के लिए अक्सर पुलिस बल का इस्तेमाल करती थी। कांग्रेस पार्टी के समर्थन से गुंडों ने शरणार्थियों को आतंकित कर रखा था।

राज्य-प्रायोजित आतंक के विरोध में, कम्युनिस्टों ने शरणार्थियों माँगों को उठाने के लिए उन्हें संगठित किया। परिणामस्वरूप, शरणार्थियों के अधिकारों और आजीविका के लिए कम्युनिस्टों, जिनमें से बहुत से प्रवासी शरणार्थी थे, की लड़ाई के बाद कई नयी शरणार्थी बस्तियाँ अस्तित्व में आईं। कनक के भाई कलकत्ता में एक ऐसी ही शरणार्थी बस्ती में रहने चले गए, जहाँ वे कनक, उनके बेटे, और अपने बीमार बहनोई के साथ रहते थे, इस दौरान सरोज मुखर्जी भूमिगत थे।

उस अवधि के दौरान ट्राम किराया और महिलाओं के नेतृत्व में शरणार्थियों के लिए राज्य सहायता बढ़ाने के लिए आंदोलन जैसे दूसरों आंदोलनों के साथ कम्युनिस्टों द्वारा लड़ी गई कई ऐतिहासिक लड़ाइयों में से एक थी शरणार्थियों

के अधिकार के लिए आंदोलन। इसे इस संदर्भ में देखना चाहिए कि इन शरणार्थी बस्तियों की कई महिला नेताओं ने स्वतंत्र भारत के पहले आम चुनाव में हिस्सा लिया और कई सीटों पर जीत दर्ज की।

अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति का गठन

1954 में, कनक मुखर्जी ने नेशनल फ़ेडरेशन ऑफ़ इंडियन वुमन (NFIW) की स्थापना करने में मदद की, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से संबद्ध संगठन जिसने भारत भर के राज्यों के वामपंथी नारीवादी समूहों को एक साथ आकर्षित किया। जून 1954 में, कलकत्ता में होने वाले स्थापना सम्मेलन में 602 प्रतिनिधियों ने भाग लिया जो कुल मिलाकर पूरे भारत के चौदह राज्यों की 1,29,000 से अधिक महिला सदस्यों का प्रतिनिधित्व कर रही थीं।

1964 में, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) या सीपीआई(एम) का गठन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी या सीपीआई में विभाजन के बाद हुआ था। पार्टी के भीतर लम्बे समय से संशोधनवादी प्रवृत्तियों और मार्क्सवादी सिद्धांतों के आधार पर मज़दूर वर्ग की मुक्ति के लिए वास्तविक संघर्ष को लेकर एक वैचारिक लड़ाई विकसित हो रही थी; कनक मुखर्जी भारत में उन महिलाओं के आंदोलन की अगुवा थीं, जिन्होंने संशोधनवादी प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी। इस तरह की बहसों का महिलाओं के आंदोलन पर प्रभाव पड़ा और कई निर्भीक और सशक्त नेता-जैसे कि मणिकुंतला सेन - ने इस दौरान सीपीआई छोड़ दी। पश्चिम बंगाल में ये उथल-पुथल भरे साल थे।

कम्युनिस्ट पार्टी में विभाजन और आंतरिक वैचारिक बहस के बावजूद, NFIW 1970 के दशक तक बरक़रार रहा। मार्च 1970 में, सीपीआई(एम) से संबद्ध एक वामपंथी महिला संगठन का गठन किया गया। इसे पशिमबंग गणतांत्रिक महिला समिति (पश्चिम बंगाल जनवादी महिला समिति) कहा गया।

जून 1975 में, प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी ने देशव्यापी आपातकाल की घोषणा की जिसने नागरिक स्वतंत्रता के विवध रूपों को निलंबित कर दिया और विरोध प्रदर्शनों को अवैध घोषित कर दिया। जबकि अधिकांश कम्युनिस्ट इस अवधि के दौरान भूमिगत हो गए, लेकिन उन्होंने संगठन का काम जारी रखा। कनक मुखर्जी ने अन्य महिला साथियों के साथ मिलकर नवगठित पश्चिमबंग गणतांत्रिक महिला समिति का काम जारी रखा और आपातकाल समाप्त होने के बाद 1978 में सीपीआई(एम) की पश्चिम बंगाल राज्य कमिटी में शामिल हो गईं; उन्होंने 1989 से 1998 तक पार्टी की केंद्रीय कमिटी के सदस्य के रूप में कार्य किया।

1981 में, सीपीआई(एम) से संबद्ध महिला संगठन अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति (AIDWA) की स्थापना की गई। पहले साल में ही इसकी सदस्यता 5,90,000 हो गई। अपने शुरुआती वर्षों से, AIDWA ने एक वैचारिक और संगठनात्मक आधार विकसित किया; इसने लैंगिक सवाल के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं जैसे कि वर्ग, जाति और धर्म के बीच के संबंध पर ज़ोर दिया और साथ-ही-साथ सभी वर्गों और सभी समुदायों की महिलाओं को एक अनुशासित जन संगठन में संगठित किया। AIDWA ने पूरे भारत में ग़रीब और कामकाजी वर्ग की महिलाओं की बड़ी संख्या को संगठित किया और उनके संघर्ष में शामिल होने के लिए उग्रपंथी मध्यम वर्ग की महिलाओं के लिए एक पुल का काम किया। AIDWA का मुख्य संघर्ष भारत

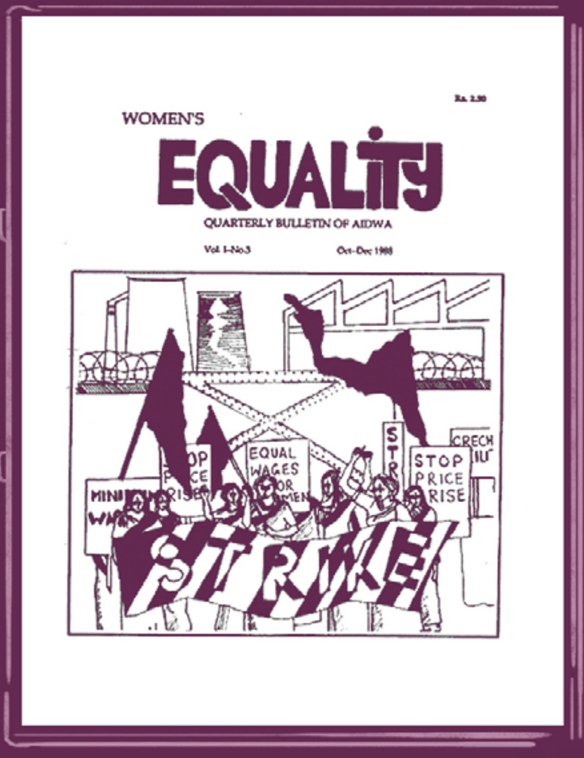
Rs. 2.50

WOMEN'S
EQUALITY
QUARTERLY BULLETIN OF AIDWA

Vol. I-No.3 Oct-Dec 1988

विमन'स इक्वालिटी अंक 1 सं 3 (अक्टूबर-दिसंबर 1988)

के सबसे हाशिये पर रहने वाले महिलाओं के इर्द-गिर्द केंद्रित था; यह AIDWA के संघर्षों के वर्गीय दृष्टिकोण का परिणाम था।

कनक मुखर्जी ने 1981 से 1999 तक AIDWA के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य किया। अपने संगठनात्मक कार्य और अपने लेखन के माध्यम से उन्होंने व्यापक वर्ग संघर्ष के संदर्भ में नारीवादी संघर्षों को रखने के महत्व पर ज़ोर दिया। जैसा कि उन्होंने महिलाओं की मुक्ति के बारे में अपने पर्चे में लिखा है, ‘हम महिलाओं के अधिकारों के सवाल को संदर्भों से काटकर नहीं देख सकते हैं। महिलाओं की अधीनता और उनके साथ भेदभाव की जड़ें वर्ग शोषण में निहित हैं’। AIDWA के संविधान को लिखने में भी इनकी केंद्रीय भूमिका रही है, जिसमें कहा गया है:

जैसा कि भारतीय महिलाओं का उत्पीड़न सामान्य रूप से भारतीय लोगों के शोषण का एक अभिन्न अंग है, और महिलाओं की मुक्ति के लिए संघर्ष मज़दूरों, किसानों, युवाओं और उत्पीड़ित मेहनतकशों के अन्य सभी वर्गों के संघर्षों के साथ जुड़ा हुआ है, जो अपने साझा हितों तथा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध हैं, अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति जनता के इन सभी प्रगतिशील और जनवादी वर्गों का पूरा समर्थन करती है।

1980 के दशक के दौरान AIDWA के काम करने का तरीक़ा अन्य महिला समूहों और वामपंथी युवाओं, छात्रों, किसानों, श्रमिकों, और खेत मज़दूर यूनियनों से संबद्ध संगठनों के साथ मिलकर अभियान चलाने पर केंद्रित था। संगठन व्यापक रूप से दहेज हत्याओं पर अपने अडिग रुख़ के लिए जाना जाता था, जिसमें दहेज को लेकर होने वाले विवादों में युवतियों की उनके पति और ससुराल वालों द्वारा हत्या कर दी जाती थी या आत्महत्या के लिए प्रेरित किया जाता है। इस अभियान ने महिलाओं की सुरक्षा के लिए बेहतर क़ानून बनाने

और बेहतर आर्थिक सहायता प्रदान करके उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता की गारंटी देकर अपमानजनक विवाह से निकलने में सक्षम बनाने लिए संघर्ष किया।

AIDWA ने महलाओं को संगठित करके, जिसमें सास भी शामिल थीं, दहेज हत्याओं के ख़िलाफ़ भी लड़ाई लड़ी, और अपने बिरादराना संगठनों जैसे कि ट्रेड यूनियनों और किसानों की यूनियनों का उपयोग करके महिलाओं के हिंसा के बिना जीने के अधिकार के लिए संघर्ष किया। AIDWA कार्यकर्ताओं ने दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए सभी परिवारों पर दबाव बनाने और बहुओं के साथ सम्मान के साथ व्यवहार करने के लिए देश भर में अपनी इकाइयों में आस-पड़ोस में अभियानों का नेतृत्व किया। AIDWA कार्यकर्ता अपनी निडरता, शक्तिशाली लोगों और संस्थानों से लड़ने, और न्याय को हासिल करने के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति के लिए पहचानी जाने लगीं।

1980 के दशक के दौरान भारतीय महिलाओं के आंदोलन में AIDWA ने जो कुछ अनूठा किया वह यह था कि ग्रामीण महिलाओं पर ध्यान दिया गया। 1984 तक भारतीय महिलाओं के आंदोलन का अधिकांश हिस्सा बेहतर भविष्य के लिए ग्रामीण महिलाओं के दृष्टिकोण को नकार रहा था। कमला भसीन और निगहत सईद ख़ान द्वारा लिखितसम क्वेस्चन्स ऑन फ़ेमिनिज़म एंड इट्स रेलेवेंस इन साउथ एशिया (1986) जैसे कुछ पर्चों में इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया गया था कि दक्षिण एशिया में महिलाओं की अलग-अलग समस्याएँ हैं। एक धर्मनिरपेक्ष नारीवाद जिसने पूरे दक्षिण एशिया में महिलाओं के प्रति एकजुटता की कल्पना की थी, वह भारत में हिंदू बहुसंख्यकों की शक्ति के साथ-साथ जाति, वर्ग और क्षेत्र के अन्य शक्ति असंतुलन को संबोधित किए बिना दीर्घकालिक नहीं हो सकता था।

1940 के दशक से, मुखर्जी ने स्पष्ट रूप से देखा कि किस तरह से ग्रामीण क्षेत्रों को धार्मिक कट्टरवाद ने बुरी तरह प्रभावित किया और समाज को विभाजित

किया। धार्मिक कट्टरवाद ने धार्मिक पहचान के आधार पर महिलाओं को विभाजित कर दिया। भारत में साम्यवादी दृष्टिकोण सांप्रदायिकता और फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई में वर्ग एकता को विकसित करने के लिए था। भारत में कोई भी सच्चा जन पक्षधर नारीवादी आंदोलन तब तक नहीं उभर सकता था, जब तक कि वह जाति और धर्म के आधार पर शासक वर्ग द्वारा बाँटे गए समाज को संबोधित न करे।

नयी दिल्ली में, AIDWA ने - सात अन्य राष्ट्रीय महिलाओं के समूहों के साथ - 1993 में कांग्रेस सरकार के उकसावे पर की गई सांप्रदायिक कार्रवाई के ख़िलाफ़ पहला विशाल प्रदर्शन आयोजित किया। इसमें बाबरी मस्जिद को तोड़ने का मामला भी शामिल था, जिसके बारे में हिंदू कट्टरपंथियों का दावा था कि यह राम मंदिर पर बना था। AIDWA और अन्य समूहों ने धर्मनिरपेक्ष सामाजिक ताने-बाने को बचाने के संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं का एक बहु-धार्मिक गठबंधन बनाया। AIDWA सदस्यों ने मुस्लिम विरोधी हिंसा का निष्पक्ष मूल्यांकन करने के लिए राष्ट्रीय महिला संगठनों का एक संयुक्त प्रतिनिधिमंडल भी बनाया।

अंतर-खंडीय संगठन की AIDWA की रणनीति

1980 के दशक में ग्रामीण भारत में अपनी ऊर्जा को केंद्रित करने के AIDWA के फ़ैसले ने ग्रामीण महिलाओं के बीच से नेतृत्व को खोजने, उन्हें प्रेरित करने तथा नेतृत्वकारी भूमिका तक लाने के लिए उनका विकास करने के साथ-साथ

ग्रामीण महिलाओं को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उनके बारे में उनको शिक्षित करने के लिए नयी रणनीति का विकास किया। ग्रामीण क्षेत्रों को लेकर उनका ध्यान नयी रणनीतियों की ओर गया, जिसमें AIDWA का 'अंतर-खंडीय कार्यान्वयन' भी शामिल है, जो सदस्यों को संगठित करने और उन सहयोगियों की पहचान करने में मदद करता है जिन्होंने जाति, नस्ल तथा धर्म के आधार पर ख़ास तरह का अन्याय और ऐतिहासिक उत्पीड़न का सामना किया। ये विधियाँ उन सबक़ों से मिलकर विकसित हुईं जो महिला आत्म रक्षा समिति के साथ एक ग्रामीण कार्यकर्ता के रूप में कनक मुखर्जी ने सीखा था, जो धर्म, जाति की स्थिति, भाषा और नस्ल के भौतिक असमानताओं बावजूद ग्रामीण महिलाओं को ज़मींदारी और उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष को लिए एकजुट करता है।

'अंतर-खंडीय कार्यान्वयन' की अवधारणा कुछ विस्तार की माँग करता है। समाज को उन समूहों में विभाजित किया गया है जिनका एक-दूसरे के साथ पदानुक्रमित संबंध है। इस पृथक्करण को अनदेखा करने और समाज को एक जैसा ही मानने का मतलब यह हो सकता है कि समूहों या क्षेत्रों द्वारा सामना किए जाने वाले विशेष प्रकार के उत्पीड़न और विशेष शोषण की पहचान नहीं की गई है और उनसे नहीं निपटा गया है। उदाहरण के लिए, हिंदू सांप्रदायिकता के उदय के संदर्भ में, मुस्लिम महिलाओं द्वारा अनुभव किए गए विशिष्ट उत्पीड़न पर किसी भी संघर्ष में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। वामपंथी राजनीतिक दल जनता के सबसे वंचित समूहों के संघर्ष और उनके मूल मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हैं; इन समूहों में स्वदेशी समुदाय (आदिवासी), मुस्लिम, दलित और महिलाएँ शामिल हैं। इन समूहों के विशिष्ट अनुभव और संघर्षों पर ध्यान केंद्रित करके, सीपीआई(एम) जैसी वामपंथी पार्टियाँ और AIDWA जैसे वाम जन संगठनों ने सामाजिक परिवर्तनों के सिद्धांत को निर्मित करने में इन समुदायों के जीवन और संघर्षों को शामिल किया है।

जैसा कि एलिज़ाबेथ आर्मस्ट्रांग ने अपनी पुस्तक जेंडर एंड नियोलिबरलिज़्म में स्पष्ट किया है, AIDWA के मामले में संगठन के अंतर-खंडीय तरीक़े ने

AIDWA के राजनीतिक लक्ष्यों, संगठनात्मक तरीक़ों और अभियानों के केंद्र में सबसे अधिक वंचित महिलाओं की समस्याओं और माँगों को लाया। AIDWA के भीतर अंतर-खंडीय संगठन ने हाशिये पर रहने वाली महिलाओं के बीच के मतभेदों का एक समृद्ध विश्लेषण तैयार किया, वर्ग संघर्ष की आवश्यकताओं के साथ-साथ विशेष उत्पीड़न के सवाल को रखा, जो सभी श्रमिक-वर्ग और कामकाजी-ग़रीब महिलाओं को लाभान्वित करेगा जो

संगठन का आधार हैं।

कनक मुखर्जी जैसी महिलाओं के नेतृत्व में चालीस वर्षों के दौरान AIDWA ने ग्रामीण और शहरी कामकाजी वर्ग की महिलाओं और प्रगतिशील मध्यम वर्ग की महिलाओं के बीच वर्गीय-अंत:संबंध पर आधारित आंदोलन विकसित किया। संगठन ने न केवल एक समान शोषण और उत्पीड़न का सामना करने वाली महिलाओं की एकरूपता वाले जनसमूह के रूप में मज़दूर-वर्ग की महिलाओं की मुक्ति के लिए संघर्ष किया, बल्कि कृषि-आधारित श्रमिकों, आदिवासी महिलाओं, दलित महिलाओं, और मुस्लिम महिलाओं के रूप में भी उनकी संपूर्ण जटिलताओं के साथ भी जुड़ाव पैदा किया।

कनक मुखर्जी ने अपने सार्वजनिक जीवन में राज्य सभा के सदस्य के रूप में तथा कलकत्ता में रहने वाली एक बुज़ुर्ग महिला के रूप में किए गए अपने कामों के ज़रिये इस दृष्टि को विकसित किया और इसका विस्तार किया। उन्होंने घरे-बाइरे पत्रिका की संपादकीय ज़िम्मेदारी उठाई, 1957 से लेकर 1967 तक वो इसकी संपादक रहीं। कनक मुखर्जी 1968 में बंगाली भाषा की पत्रिका एकशाथे की संस्थापक संपादक बनीं, और जो बाद में AIDWA की बांगला पत्रिका बन गई। एक संपादक के रूप में उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि कामकाजी महिलाओं का जीवन इन प्रकाशनों के केंद्र में रहे।

कनक मुखर्जी 2005 में अपनी मृत्यु तक एक कम्युनिस्ट और महिला कार्यकर्ता

रहीं, जिस समय AIDWA की एक करोड़ से अधिक सदस्य थीं। उन्होंने ग्रामीण महिलाओं को पितृसत्तात्मक लैंगिक संबंधों, नवउदारवाद की वजह से जातिगत उत्पीड़न और धार्मिक सांप्रदायिकता भी इसमें शामिल हो गया, के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए संगठित करने के लिए कठोर परिश्रम के साथ बनाई गई AIDWA की रणनीतियों को साझा किया। समाज, धर्म और जातीयता के सभी खंडों के कामगार शहरी और ग्रामीण महिलाओं के अधिकारों के एक अथक सेनानी के रूप में मुखर्जी ने जो उदाहरण स्थापित किया वो आज भी महत्वपूर्ण बना हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ:

AIDWA. *Aims & Objects Program Constitution of All India Democratic Women's Association, Adopted at the First Conference of the All India Democratic Women's Association, Held in Madras on 10–12 March, 1981*. New Delhi: no pub., 1981.

AIDWA. 'Homage: Comrade Kanak Mukherjee', *Women's Equality*. (October–December 2004 & January–March 2005): 3.

Armstrong, Elisabeth. *Interview with Kanak Mukherjee*, 6 August 1994.

Armstrong, Elisabeth. *Gender and Neoliberalism: All India Democratic Women's Association and the Fight for Socialism*. New Delhi: LeftWord Books, 2021.

Bhasin, Kamla and Khan, Nighat Said. *Some Questions on Feminism and Its Relevance in South Asia*. New Delhi: Kali for Women, 1986.

Bhattacharya, Malini. 'An Interview with Kanak Mukherjee,' *Women's Equality*. (April–June, 1998): 28-30.

Chakravartti, Renu. *Communists in Indian Women's Movement*. New Delhi: People's Publishing House, 1980.

Chatterji, Joya. *Spoils of Partition: Bengal and India, 1947–1967*. New York: Cambridge University Press, 2007.

Chattopadhyay, Suchetana. *An Early Communist: Muzaffar Ahmad in Calcutta, 1913–1929*. New Delhi: Tulika Books, 2012.

Marik, Soma. 'Breaking Through a Double Invisibility: The Communist Women of Bengal, 1939–1948', *Critical Asian Studies*, 45, no.1 (2013): 79–118.

Menon, Parvathi. *Breaking Barriers: Stories of Twelve Women*. New Delhi: Leftword Books, 2005.

Mukherjee, Kanak. 'Save from Dishonour Your Bengali Sisters', *People's War*. 9 January 1944.

Mukherjee, Kanak, *Narimukti Andolan O Amra*. Calcutta: National Book Agency, 1993.

Mukherjee, Kanak. 'Our Famine-Homeless Sisters' Plight: Bengal Government's Work Houses Closing Down', *People's War*. 24 September 1944.

Mukherjee, Kanak. *Women's Emancipation Movement in India: A Marxist View*. New Delhi: National Book Centre, 1989.

'Report of the Women's Delegation to Bhopal, Ahmedabad and Surat', *Equality* 5, no. 1 (January–June 1993): 10–22.

Roy, Anwesha. *Making Peace, Making Riots: Communalism and Communal Violence, Bengal 1940–1947*. Cambridge: Cambridge University Press, 2018.

Sarkar, Paromita. 'Kanak Mukherjee: Ekti Rajnaitik Jiban (1921–2005)', (unpublished MPhil, University of Calcutta, 2014).

Tricontinental: Institute for Social Research. *One Hundred Years of the Communist Movement in India.* https://www.thetricontinental.org/dossier-32-communist-movement-in-india/

Sengupta, Amalendu. *Uttal Challish: Asamapto Biplab*. Kolkata: Parul Publishers, 1957.

अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति का तीसरा सम्मेलन, पश्चिम बंगाल, 9-12 अक्टूबर 1990।
कनक, सफ़ेद कपड़ों में, सामने की पंक्ति में दाईं ओर से दूसरे स्थान पर खड़ी हैं।

LAYL
AL-ATTA
1944-1
NELA MARTINEZ 1912-2004
ANNA JULIA COOPER
1858-1964
SULAFA JADALLA
1941-2002
1935-1967
FOROUGH
1840-1921
1921-1986
ANDRÉE BLOUIN
1952-1977
SAIDA MENEBHI
FUNMILAYO RANSOME-KUTI
1900–1978
ALAA SALAH
1997-
VILM
ESPÍ
1930-20
1927-2014
SIMIN BEHBAHANI
1946-2019
BETH CARVALHO
1923-2007
NAZIHA AL-DULAIMI
1971-2016
BERTA
MARIE VIEUX-CHAUV
Las hermanas Mirabal
25.11.1960
NINA SIMONE
1933-2003
ASELA DE LOS SANTOS TAMAYO
1929-2020
1920-1980
“Concebimos la necesidad de una conciencia revolucionaria y la hemos logrado.”
1925-2015
Marielle presente
1931-2014
ANAHITA RATEBZAD
RITA VALDIVIA
1929-2017
EMMA
MARSHA P. JOHNSON
HAYDÉE SANTAMARÍA
1922-1980
CARSON
1907-1964
QIU 秋
JIN 瑾
1875-1907
1795-1856
MANUELA SÁENZ Y
FIRST
1925-1982
MARIA BONITA
1911-1938
GODAVARI PARULEKAR
VARVARA STEPANOVA

tricontinental

Tricontinental: Institute for Social Research

is an international, movement-driven institution focused on stimulating intellectual debate that serves people's aspirations.

www.thetricontinental.org